International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 14 Issue 4, July-August, 2026

2014 के बाद केन्द्र राज्य संबंधों के बीच विवादस्पद मुद्दे

सच्चिदा नंद[1], प्रो. प्रवीण कुमार[2]

[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, बुलंदशहर
[2]शोध पर्यवेक्षक, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. (पी.जी.) कॉलेज, बुलंदशहर

प्रस्तावना

संघवाद सरकार का वह रूप होता है। जिसमें देश के भीतर सरकार के कम से कम दो स्तर मौजूद होते है - पहला केन्द्रीय स्तर पर और दूसरा स्थानीय या राज्य पर। भारत की बात करें तो यहॉ संघवाद को स्थनीय, राज्य स्तर और केन्द्रीय स्तर के मध्य अधिकारों के वितरण के रूप में परिभाषित किया गया है।

विगत सात दशकों की यदि हम बात करें तो हमारे देश में केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों का स्वरूप बदलता रहा है जबकि संविधान द्वारा स्थापित संघीय योजना अपरिवर्तित रहीं है। राज्यों की ओर से समय-समय पर अधिक से अधिक स्वायत्तता की मांग और संघीय योजना में परिवर्तन के विभिन्न सुझावों के बाद भी संवैधानिक प्रावधानों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया किंतु भारत की बहुदलीय प्रणाली ने संघीय व्यवस्था के कार्यान्वयन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया, केन्द्र और राज्यों में सत्ता परिर्वतन के साथ - साथ केन्द्र-राज्य संबंधों में भी बदलाव आता रहा है।

संकेताक्षर - केन्द्र-राज्य संबंध, राजनीति, संघवाद, लोकतंत्र, संघीय

नीति आयोग - जैसे आजादी के बाद भारत में संघ एवं राज्यों के विकास के लिए 15 मार्च 1950 ई. को संघीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव पर योजना आयोग का गठन किया गया जिसका अध्यक्ष भारत का प्रधानमंत्री होता था तथा एक उपाध्यक्ष होता था, जिसे कैबिनेट मंत्री के समान दर्जा प्राप्त होता था। यह एक सलाहकारी संस्था थी जिसका प्रमुख कार्य अखिल भारतीय स्तर पर योजनाएं बनाना केंद्र व राज्य सरकार द्वारा किसी विषय में सलाह मांगे जाने पर सलाह देना तथा राज्यों को वित्त आवंटन में सलाह देना होता था।

यद्यपि योजना आयोग एक गैर संवैधानिक संस्था थी, जिसकी भूमिका सलाहकारी स्टाफ एजेंसी के रूप में की गई थी परंतु बाद में यह एक मजबूत और निदेशकीय प्राधिकार के रूप में उभरा। इसकी अनुशंसाओं पर संघ तथा राज्य दोनों ही विचार करते थे इसी कारण कुछ आलोचकों ने इसे सुपर कैबिनेट, इकोनॉमिक कैबिनेट, अथवा पैरेलल कैबिनेट की संज्ञा दे दी। इसे फिफ्थ व्हील ऑफ द कोच भी कहां जाता था अर्थात धीरे-धीरे योजना आयोग का केंद्रीकरण हो गया तथा राज्यों की भूमिका नगण्य हो गई। परिणामतः योजना आयोग की आलोचना होने लगी तथा समय-समय पर यह मांग उठने लगी कि योजनाओं का निर्माण केंद्र में बैठकर न किया जाए बल्कि लोकतांत्रिक व संघीय शासन वाले देश में गांव, जिले तथा राज्यों की समस्याओं को ध्यान में रखकर योजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाए। अतः योजना आयोग में केंद्रीकरण की जगह विकेंद्रीकरण को स्थान दिया जाना चाहिए। वास्तव में इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक तक योजना आयोग अपने मूल उद्देश्य से भटक गया तथा राज्यों द्वारा इसको समाप्त किए जाने की मांग की जाने लगी, यही कारण है कि 15 अगस्त 2014 को लाल किले की प्राचीर से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने योजना आयोग को समाप्त कर उसकी जगह नीति आयोग की स्थापना की घोषणा की जिसे 01 जनवरी 2015 को केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव के द्वारा अमलीजामा पहना दिया गया।

नीति आयोग की स्थापना के बाद भारतीय शासन एवं राजनीति में एक संस्थागत बदलाव की शुरुआत हो गई तथा कहा गया कि नीति आयोग की स्थापना से संघ एवं राज्यों के संबंधों में मजबूती आएगी तथा सहयोगी संघवाद को और अधिक मजबूत किया जा सकेगा क्योंकि 1950 में देश में जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियां विद्यमान थी वह 2015 के आते-आते बदल चुकी थी । वर्तमान में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ी है अतः बदलते राजनीतिक आर्थिक परिदृश्य में भारत की आर्थिक वृद्धि दर को बढ़ाने के लिए नवाचारों को योजना में शामिल करने के लिए राष्ट्रीय हित में राज्यों की अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए और सहयोगी संघवाद को बढ़ाने के लिए एक नई संस्था नीति आयोग की स्थापना जरूरी थी।

नीति आयोग का अध्यक्ष भारत का प्रधानमंत्री होता है। उपाध्यक्ष को प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किया जाता हैं। इसकी गवर्निंग काउंसलिंग में सभी राज्यों के मुख्यमंत्री और संघ राज्य क्षेत्रों के उपराज्यपाल या मुख्यमंत्री शामिल होते हैं। योजना आयोग की तरह ही नीति आयोग का गठन भारत सरकार को एक कार्यपालिकीय संकल्प अर्थात केन्द्रीय मंत्रिमंडल के प्रस्ताव द्वारा किया गया है। इस प्रकार यह एक गैर संवैधानिक या संविधानेत्तर निकाय के साथ-साथ गैर वैधानिक निकाय भी है।

नीति आयोग का प्रमुख कार्य भारत जैसे विविधितापूर्ण एवं बहुलतावादी देश के लिए योजनाओं का निर्माण करना है क्योंकि संपूर्ण देश के लिए एक केंद्र से नियोजन करना अत्यधिक दुरूह कार्य है क्योंकि अलग-अलग राज्यों की पृथक-पृथक समस्याएं हैं यदि उड़ीसा में आधारभूत संरचना का विकास बड़ी समस्या है तो राजस्थान में पेयजल और सिंचाई की समस्या प्रमुख है झारखंड आज भी सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़ा है जबकि पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध है इसलिए राज्यों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए राज्यों के लिए अलग-अलग नियोजन होना चाहिए।

नीति आयोग में संघ एवं राज्यों के बीच सहकारिता एवं सहयोग बढ़ाने के लिए हीं संघ और राज्य आपस में मिलकर योजनाओं का निर्माण करेंगे इसी उद्देश्य से नीति आयोग ने हाल ही में ''स्ट्रेटजी फॉर न्यू इंडिया 75'' नामक एक रिपोर्ट को जारी किया है जिसका उद्देश्य सन 2022 तक एक ऐसे समावेशी विकास का लक्ष्य प्राप्त करना है जिससे अर्थव्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाया जा सके साथ ही साथ केंद्र और राज्यों के मध्य अधिकाधिक वित्तीय और प्रशासनिक सहयोग किया जा सके। यह रिपोर्ट तीन प्रमुख बातों पर फोकस करती है। जिसमे पहला है जनसहभागिता अर्थात विकास की प्रक्रिया में लोगों की भागीदारी तथा दूसरा सभी राज्यों एवं प्रांतों के मध्य संतुलित विकास की रणनीति एवं तीसरा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के निष्पादन अंतराल को समाप्त करना इस रिपोर्ट में भारतीय अर्थव्यवस्था के 41 प्रमुख क्षेत्रों को चिन्हित करके आगे की राह को प्रस्तावित किया जाएगा ये 41 क्षेत्र चार प्रमुख खण्डों-वाहक अवसंरचना, समावेशन और प्रशासन में बांटे गए हैं इस प्रकार यह रिपोर्ट 41 प्रमुख विकास के क्षेत्रों के बारे में संक्षिप्त अवलोकन प्रस्तुत करेंगी।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अतीत की परिपाटी से हटते हुए चहुमुखी विकास करने तथा सहयोगी एंव प्रतिस्पर्धी संघवाद को बढ़ावा देने पर जोर दिया। लंबे समय तक केंद्र और राज्यों के बीच बड़े भाई जैसा संबंध रहा। सभी के लिए एक ही साँचे का इस्तेमाल वर्षो तक किया गया। विभिन्न राज्यों की विविधिता और उनकी स्थानीय जरूरतों को ध्यान में नहीं रखा गया, इसलिए राज्यों को और अधिक मजबूती और शक्ति देने के लिए नीति आयोग का गठन किया गया। एक महत्वपूर्ण विकासमूलक कदम के तहत केंद्र से राज्यों की ओर एकतरफा प्रवाह की नीति को बदल दिया गया और इसकी जगह राज्यों के साथ एक वास्तविक और सतत भागीदारी ने ले ली। नीति आयोग सरकार के लिए रणनीतिक नीतिगत विजन मुहैया कराने के साथ ही आकस्मिक मुद्दों के समाधान के लिए तेजी से काम करता है। नीति आयोग राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं की साझा दृष्टि विकसित करने के लिए काम करता है। इसमें राष्ट्रीय उद्देश्य के आलोक में राज्यों की सक्रिय भागीदारी होती है नीति आयोग का विजन प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्रियों के लिए राष्ट्रीय एजेंडों का मसौदा उपलब्ध कराता है। यह सतत रूप से राज्यों के साथ संरचनात्मक समर्थन और कार्यप्रणाली के साथ सहयोगात्मक संघवाद को बढ़ावा देता हैं। यह मानता है कि मजबूत राज्य ही मजबूत राष्ट्र का निर्माण करते हैं। यह गांव स्तर पर विश्वसनीय योजनाऐं बनाने की प्रणाली विकसित करेगा।

मोदी सरकार ने सहयोगी संघवाद को बढ़ावा देने के लिए ही एक महत्वपूर्ण कदम के तहत 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। इससे राज्यों को कर राजस्व का 42 प्रतिशत हिस्सा मिलेगा, जबकि पहले यह आंकड़ा 32 प्रतिशत था। हालांकि जाहिर तौर पर इससे केंद्र सरकार के पास कम धन बचेगा, लेकिन भारत सरकार ने इन सिफारिशों को सकारात्मक भाव से लिया क्योंकि यह सिफारिशें राज्यों को अपनी प्राथमिकताओं और जरूरतों के अनुसार योजनाओं को बनाने और उन्हें लागू करने के लिए अधिक शक्ति और आजादी देती है यह एक अभूतपूर्व बढ़ोतरी है जो राज्यों को हर संभव तरीके से सशक्त करेगी, उन्हें वित्तीय अनुशासन बरतते हुए और अधिक वित्तीय शक्ति और आजादी के साथ योजना बनाने की इजाजत होगी। इससे राज्यों की विशेष श्रेणी के राज्य के दर्जे की मांग को मानना अव्यवहारिक हो जाएगा क्योंकि संघ सरकार द्वारा 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों को मानते हुए राज्यों को पर्याप्त संसाधनों का आवंटन किया गया है फिर भी कुछ राज्यों द्वारा अपनी क्षेत्रीय राजनीति की महत्वाकांक्षाओं को संतुष्ट करने के उद्देश्य से विशेष श्रेणी के राज्य के दर्जे की मांग को रखा जाता है तथा अपनी मांगों को मनवाने के लिए संसदीय कार्यवाही में अवरोध उत्पन्न किया जाता है, जोकि पूर्णतया अव्यवहारिक है।

एक अनोखी पहल के तहत प्रधानमंत्री मोदी अपनी चीन यात्रा के दौरान दो मुख्यमंत्रियों को साथ ले गए वहां उन्होंने एक महत्वपूर्ण पहल प्राविंशल लीडर्स फोरम में भाग लिया। इससे केन्द्र और राज्य संबंधों में एक नए युग का आरंभ हुआ। इससे पहले शायद कभी भारत के विकास के लिए काम करने में टीम इंडिया का भाव नहीं देखा गया। इसी तरह से पूर्वी भारत के कोयला भंडार वाले राज्यों को महत्वपूर्ण बढ़ावा देते हुए कायेला आवंटन से मिली राशि का एक बड़ा हिस्सा राज्यों को मिलेगा जिससे उन्हें भारी लाभ होगा।

यद्यपि मोदी सरकार ने सहकारी संघवाद को बढावा देने के लिए अनेक कदम उठायें हैं। लेकिन इन सबके बावजूद योजना आयोग की समाप्ति ने एक अनचाहे परिणाम को जन्म दिया द्य हालाँकि योजना आयोग की समाप्ति एक जरूरी तथा बहुप्रतीक्षित मांग थी जिसे एक सुधार के रूप में ही लिया जाना चाहिये। योजना आयोग की समाप्ति ने एक संस्थागत निर्वात की स्थिति को जन्म दिया है। राष्ट्रीय स्तर पर कुछ योजनाऐं जो भारत के सभी नागरिको के लिये न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रखकर उपयोगी होती है, के क्रियान्वयन के संबंधन में संस्थागत निर्वात की स्थिति उत्पन्न हुई है। विभिन्न विचारक और अर्थशास्त्री इस समस्या को दूर

करने के लिये एक संघीय संस्थान की वकालत कर रहे हैं जिसमें योजना आयोग की कमियों को दूर करते हुए एक ऐसे संस्थान का निर्माण हो जिससे निर्वात को भरा जा सके। यह सत्य है कि विभिन्न राज्य सरकारें योजना आयोग के केंद्रीकरण की प्रकृति को लेकर कड़ी आलोचना करती रही हैं। लेकिन योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद के साथ मिलकर राज्यों को एक ऐसा मंच उपलब्ध कराता था जिसमें राज्य, केंद्र के साथ वार्ता कर सकते थे तथा राज्य अपनी समस्याओं को केंद्र के समक्ष रख सकते थे। वहीं दूसरी ओर 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों के बावजूद इस निर्वात की स्थिति में राज्यों को संसाधनों का स्थानांतरण केंद्रीय मंत्रालयों, मुख्य रूप से वित्त मंत्रालय पर निर्भर हो गया है।

भारत में राज्यों के स्तर पर आर्थिक तथा भौगोलिक विषमताएँ हैं। प्रायः अध्ययनों में सामने आया है कि प्रति व्यक्ति उच्च आय वाले राज्य अपनी स्वयं की योजनाएँ बनाने और क्रियान्वित करने की क्षमता रखते हैं। किंतु प्रति व्यक्ति निम्न आय वाले राज्य तथा छोटे राज्यों को नियोजन के स्तर पर कठिनाई का सामना करना पड़ता है। साथ ही इन राज्यों के पास संसाधनों की कमी भी होती है। ऐसी स्थिति में ऐसे राज्यों को केंद्र की अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता होती है। केन्द्र नीति, संसाधन तथा तकनीक के स्तर पर राज्यों की सहायता केन्द्र प्रायोजित योजनाओं के माध्यम से कर सकता है। अतः बड़े राज्यों अर्थात् आर्थिक रूप से सक्षम राज्यों के लिये राजकोषीय संघवाद तो सही विचार है किंतु आर्थिक रूप से कमजोर तथा छोटे राज्यों के लिये राजकोषीय केंद्रीकरण आवश्यक है। भारत में पिछले दो दशकों में केंद्रीय योजनाओं में वृद्धि हुई है लेकिन भारत के कम आय तथा कमजोर रूप से शासित राज्य केंद्र प्रायोजित योजनाओं के कोष का दक्षता से उपयोग करने में असफल रहे हैं। छः प्रमुख योजनाओं के विश्लेषण के आधार पर वर्ष 2016 के आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया था कि भारत के सबसे गरीब जिलों को एक राज्य को आवंटित कुल धन का मुश्किल से 40 प्रतिशत प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में इस समस्या से निपटने के लिये योजना आयोग की वित्तीयन प्रणाली को लागू करने की आवश्यकता नहीं हैं। लेकिन एक भिन्न प्रकार के उपागम पर विचार किया जा सकता है जो उपर्युक्त मुद्दे का समाधान उपलब्ध करा सके जिससे योजनाओं का लाभ लक्षित बिंदु तक पहुँच सके।
केन्द्र-राज्य संबंधों पर जी.एस.टी. का प्रभाव

किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कर आवश्यक होते हैं। किसी देश के नागरिक जो कर देते हैं वे कर ही सड़क और पुल बनाने, बांध खड़े करने, रेल नेटवर्क का रखरखाव करने, स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने जैसी विकास की गतिविधियों में खर्च होते हैं। प्राचीन काल के राजा महाराजा भी कर वसूल करते थे। अशोक, अकबर जैसे बुद्धिमान राजाओं ने कराधान और कर संग्रह की व्यवस्थित नीति बनाई थी ताकि आम आदमी को परेशान किए बिना साम्राज्य चलाने के लिए राजस्व अर्जित किया जा सके। कुछ राजा मनमाने ढंग से कर संग्रह कराते थे। जिसका इस्तेमाल वे अपनी विलासिता भरी जीवनशैली के लिए करते थे आज भी आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में करोड़ों का नियमन अनेक नियमों-कानूनों से होता है जिन पर जनप्रतिनिधियों की नजर रहती है। भारतीय कर व्यवस्था दुनिया में सबसे पेचीदा कर व्यवस्थाओं में से एक है जिसमें केंद्र राज्यों और स्थानीय निकायों को राजस्व के लिए विभिन्न प्रकार के कर लगाने का अधिकार है। विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार के कर वसूले जाते हैं जिनमें आयकर और संपदा कर जैसे प्रत्यक्ष कर होते हैं, जिनका जनसामान्य पर सीधा असर पड़ता है और मूल्य वर्धित कर (वैट) तथा सेवा कर, निगमित कर जैसे अप्रत्यक्ष कर होते हैं जो आम आदमी को वस्तुओं तथा सेवाओं की एवज में देने होते हैं। प्रत्येक बजट से आम आदमी और कंपनियों को कर सुधार की अपेक्षा होती है। आम आदमी आय कर के स्लैब में वृद्धि की उम्मीद करता है और कंपनियां विभिन्न क्षेत्रों में कर में राहत चाहती है। सरकार आर्थिक आवश्यकताओं के अनुसार इन अनुरोधों पर विचार करती है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में अभूतपूर्व आर्थिक वृद्धि हुई है। इस वृद्धि के कारण कराधान प्रणाली में सुधारों की आवश्यकता हुई ताकि उसे विदेशी तथा घरेलू निवेशकों के लिए अधिक सरल एवं आकर्षक बनाया जा सके। वैश्विक अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों के अनुरूप चलने के प्रयास में भारतीय कराधान व्यवस्था में भी पिछले एक दशक में सराहनीय सुधार हुए हैं जिनमें कर संबंधी कानूनों को तर्कसंगत बनाना एवं सरल बनाना शामिल है।

हाल ही में लागू वस्तु एवं सेवाकर भारतीय कराधान इतिहास में ऐसे ही सर्वाधिक ऐतिहासिक कर सुधारों में शामिल है। इसमें कराधान प्रणाली को दुरुस्त करने का प्रयास है जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं की आपूर्ति के लिए एक ही कर देना पड़े। जीएसटी लागू होने के बाद राज्य तथा केंद्र के लगभग 15 करों को समाप्त कर दिया गया है, जो सरकार के सहकारी संघवाद के विचार के अनुरूप है। देश में वस्तु एवं सेवा कर जीएसटी लागू होने के साथ ही एक जुलाई 2017 से सरकार एक नए युग में प्रवेश कर गई पूरे देश में 'एक राष्ट्र एक कर एक बाजार' की व्यवस्था लागू हो गई। माना जा रहा है कि यह ऐतिहासिक सुधार कारोबारी सुगमता लाने एवं भारत को विश्व व्यापार में प्रतिस्पर्धा करने योग्य बनाने में बहुत सहायक होगा।

जीएसटी भारत में एक कर प्रणाली के सरलीकरण की ओर बड़ा कदम है इस प्रणाली की जटिलता ने देश में अभी तक कर चोरी और काले धन को ही बढ़ावा दिया है। काला धन इतनी अधिक मात्रा में है कि देश में इसकी समांतर अर्थव्यवस्था चलती बताई जाती है। सरकार ने काले धन का पता लगाने और उस पर अंकुश लगाने के लिए बहुआयामी रणनीति अपनाई हैं जिसमे नीतिगत स्तर पर पहले क्रियान्वयन के लिए जमीनी स्तर पर अधिक कार्य मजबूत विधायी एवं प्रशासनिक ढांचे, प्रणालियां एवं प्रक्रियाऐं लागू करना और सूचना प्रौद्योगिकी का समुचित इस्तेमाल करना शामिल है आय की स्वैच्छिक घोषणा की योजना, काले धन पर विशेष जांच दल का गठन, (एस.आई.टी.) विदेश में जमा काले धन से निपटने के लिए पूरी तरह से नया कानून कालाधन (अघोषित विदेशी आय एवं संपत्ति) एवं कर अधिरोपण अधिनियम 2015 बनाना, बेनामी लेनदेन (निषेध) संशोधन विधेयक प्रस्तुत करना ऐसे ही कुछ प्रमुख कदम है। किसी भी समय अपारदर्शी जटिल रही भारतीय कराधान प्रणाली अब पारदर्शी, सरल एवं भविष्योन्मुखी हो गई।

मोदी सरकार इसे और भी आगे ले जाने के लिए कटिबद्ध है ताकि भारत दुनिया भर में निवेश तथा विनिर्माण का सबसे पसंदीदा ठिकाना बन सके।

जीएसटी देश में कर सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है जिससे न केवल अर्थव्यवस्था में मेन्यूफेक्चरों और निवेशकों का विश्वास बढ़ा है बल्कि सहकारी संघवाद की भी दिशा में सरकार का एक महत्वपूर्ण कदम है। जी.एस.टी. मोदी सरकार के सहकारी संघवाद के विचार पर आधारित हैं जहां केंद्र एवं राज्य दोनों देश के लाभ लिए काम करेंगे और राज्यों को भी अपना उचित हिस्सा मिल सकेगा। सरकार ने राजस्व के बंटवारे के फार्मूले में संशोधन किया है जिससे अधिक से अधिक राज्यों को इसके लिए तैयार किया जा सकेगा और परस्पर सहभागिता से लाभ हासिल किया जाएगा।

जीएसटी भारत में लागू एक अहम अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था है जिसे 01 जुलाई 2017 को लागू किया गया था इस कर व्यवस्था में केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा अलग-अलग दलों पर लगाए जाने वाले तमाम करो को हटाकर पूरे देश के लिए एक ही प्रत्यक्ष कर प्रणाली लागू की गई है। भारतीय संविधान में इस कर व्यवस्था को लागू करने के लिए 101वां संविधान संशोधन किया गया था। सरकार व कई अर्थशास्त्रीयों ने इसे आजादी के बाद सबसे बड़ा आर्थिक सुधार बताया है। जीएसटी को पूरी तरह कंप्यूटर आधारित व्यवस्था के जरिए लागू किया जाता है ऐसे में इससे आसान अनुपालन और पारदर्शिता को बढ़ावा मिलता है, कर दरों और संरचनाओं की एकरूपता पाई जाती है, करो पर कराधान (कैस्केडिंग इफेक्ट) की समाप्ति हो जाती है, व्यापार करने में लेनदेन लागत घटने से व्यापार में होने वाली प्रतिस्पर्धा में सुधार को बढ़ावा मिलेगा, साथ ही, इसका लाभ निर्माताओं और निर्यातकों को भी मिलने की उम्मीद है एवं उपभोक्ताओं के ऊपर पड़ने वाले कर भार में कमी आएगी साथ ही वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों में भी कमी आएगी।

जीएसटी लागू करने के बाद अनेक फायदे हुए इसके बावजूद जीएसटी को कर चोरी को रोकने के उपाय के तौर पर पेश किया जा रहा था लेकिन जीएसटी की मौजूदा व्यवस्था अपने इस लक्ष्य को पाने में आंशिक रूप से ही कामयाब रही है, करदाताओं के बीच स्वैच्छिक अनुपालन की प्रवृत्ति आज भी पूरे तरीके से विकसित नहीं हो पाई है, पर्याप्त कर आधार यानी टैक्सबेस में भी उम्मीदों के अनुरूप प्रसार नहीं हुआ, जीएसटी की फाइलिंग की प्रक्रिया भी जटिल है, जीएसटी के डिजाइन को लेकर आज भी सवाल उठते रहे हैं जहां कुछ उत्पादों पर जीएसटी की रेट शून्य फीसदी है तो वहीं पर कुछ का 28 फीसदी हालांकि जीएसटी परिषद लगातार वर्तमान कर दरों को तर्कसंगत बनाने की दिशा में काम कर रही है। जीएसटी लागू होने के बाद जैसे जैसे लोग इस दिशा में प्रगति करते गए जीएसटी की राह में आने वाली चुनौतियां भी उजागर होती गई। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए गए इन्हीं कदमों में से एक महत्वपूर्ण कदम वस्तु एवं सेवा कर यानी जीएसटी की व्यापक रूप से समीक्षा करने के लिए एक उच्च स्तरीय समिति गठित की गई है। जिसका काम राजस्व संग्रह बढ़ाने समेत जीएसटी से जुड़े तमाम दूसरे मुद्दों पर भी सलाह देना है। जीएसटी परिषद में 12 सदस्य होते हैं जिसमें केंद्रीय वित्तमंत्री, केंद्रीय वित्त राज्य मंत्री और सभी राज्यों के वित्त मंत्रियों की सहभागिता होगी। 2/3 वोटिंग पावर राज्यों के पास जबकि 1/3 वोटिंग पावर केंद्र के पास रहेगा। जाहिर है यह संघवाद की स्वीकार्य भावना को दर्शाता है। सभी निर्णय जीएसटी परिषद के सदस्यों के बीच आम सहमति से लिए जाते हैं । जीएसटी परिषद के संविधान के मुताबिक कोई भी फैसला तभी पारित होगा जब वो 3/4 के मत से या फिर बहुमत से फैसला हुआ हो। जीएसटी की अब तक कई बैठकें हो चुकी हैं जिससे यही लगता है कि हम ''एक राष्ट्र एक आकांक्षा एक दृढ़ संकल्प'' से जुड़े हुए हैं। जीएसटी कानूनों के निर्धारण में सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की भागीदारी ने अहम भूमिका निभाई जो सहकारी संघवाद के लिए मिसाल है।

केन्द्र - राज्य संबंध और नदी जल विवाद

यदि हम भारत के पिछले 70 सालों के जल के इतिहास को देखें तो यह ज्ञात होता है कि पिछले 70 सालों में भारत में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता में 70 प्रतिशत की कमी आई है जबकि जनसंख्या में लगभग 3 गुना की वृद्धि हुई है अतः बढ़ती आवश्यकता और घटते जल स्रोत के कारण भारत में अब नदी जल को लेकर विवाद पहले की अपेक्षा ज्यादा देखा जा सकता है जैसे आज भी भारत के कई राज्यों के बीच नदी जल विवाद विद्यमान हैं वह चाहे यमुना लिंक नहर व रावी व्यास के पानी को लेकर पंजाब हरियाणा के बीच का विवाद हो या फिर कृष्णा नदी के जल को लेकर आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तेलंगाना और महाराष्ट्र का विवाद हो या वंशधारा नदी जल को लेकर उड़ीसा और आंध्रप्रदेश का विवाद हो या फिर कावेरी नदी को लेकर कर्नाटक, तमिलनाडु का विवाद हो यह सभी विवाद भारत के सहकारी संघवाद की अवधारणा को चोटिल करते हैं।

संविधान निर्माताओं को यह अनुमान था के नदियों के जल बंटवारे का मुद्दा राज्यों के बीच विवाद का कारण बन सकता है वे यह भी समझते थे कि ऐसे विवादों का समाधान सिर्फ न्यायपालिका के भरोसे छोड़ देना काफी नहीं होगा बल्कि उन्हें आपसी सहमति सुलह और मध्यस्थता के जरिए सुलझाने से राज्यों में परस्पर सौहार्द कायम रहेगा। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए संविधान में अनुच्छेद 262 की व्यवस्था की गई है। यह अनुच्छेद संविधान के जिस भाग में सम्मिलित है वह केंद्र राज्य संबंधों के अनेक पहलुओं को बयान करता है यानी संविधान का अनुच्छेद 262 केंद्र राज्य संबंधों को ध्वनित करने वाला प्रावधान है यह अनुच्छेद संविधान निर्माताओं की पारदर्शिता का परिचायक है। इसी अनुच्छेद द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम 1956 बनाया गया था जिसके तहत संसद को अंतर्राज्यीय नदी जल विवादों के निपटारे हेतु अधिकरण बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। जिसके निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बराबर महत्व रखते हैं जब केंद्र सरकार अधिकरण के निर्णय को

स्वीकार करके राजपत्र में प्रकाशित कर देती है तब उसे मानना राज्यों के लिए बाध्यकारी हो जाता है। किंतु इस कानून में कुछ खामियां थी, खासकर अधिकरण के गठन तथा इसके फैसले की कोई समय सीमा निश्चित ना होने के कारण आवेदन मिलने के बाद भी केंद्र सरकार कई बार लंबे समय तक अधिकरण का गठन नहीं करती थी तथा गठन के पश्चात भी अधिकरण अपना फैसला काफी विलंब से देता था हालांकि इसे सरकारिया आयोग 1988 की सिफारिशों के आधार पर 2002 में संशोधित कर लिया गया फिर भी इस कानून के आधार पर गठित 8 अधिकारणों में से मात्र तीन अधिकरण ही विवादों का निपटारा करने में सफल हुए यह कमी जरूर रही इसके पीछे राजनीतिक कारणों के साथ-साथ क्रियान्वयन की कमजोरी भी महत्वपूर्ण है।

संघीय भारत में नदी जल विवाद में अक्सर यह सवाल उठता रहता है कि नदी जल के मामले में केन्द्र का नियम मान्य होगा या राज्य का? यू तो नदी जल को राज्य सची में रखा गया है, किंतु नदी घाटी के नियमन और विकास को केन्द्र सूची का विषय माना गया है, इस कारण यह मुद्दा और उलझा हुआ नजर आता है। कुछ विद्वान नदी जल विवाद के बने रहने के पीछे इसे भी एक महत्त्वपूर्ण कारण मानते हैं। अतः उनकी मांग रहती है कि नदी जल को समवर्ती सूची में शामिल कर लिया जाए। सामुदायिक जल प्रबंधन की हमेशा से वकालत करने वाले जलपुरुष राजेंद्र सिंह ने भी पानी को समवर्ती सूची में लाने का समर्थन किया है। वहीं सरकारिया आयोग ने इसे राज्य सूची में ही रखने की अनुशंसा की थी। केंद्र सूची में इसे इस वजह से भी सीधे तौर पर शामिल नहीं किया जा सकता है, क्योंकि नदी जल का व्यापक उपयोग कृषि सिंचाई कार्यों में भी किया जाता है और कृषि सिंचाई को निर्विवाद रूप से राज्य सूची का विषय माना गया है। हालाँकि मई 2016 में जल संसाधन संबंधी स्थायी संसदीय समिति ने नदी जल को समवर्ती सूची में शामिल करने की सिफारिश की है। स्थायी समिति की राय है कि यदि पानी पर राज्यों के बदले केन्द्र का अधिकार हो तो नदी जल विवाद के साथ-साथ बाढ़-सुखाड़ जैसी स्थितियों से बेहतर ढंग से निपटना संभव हो सकेगा।

यह बात सच है समवर्ती सूची में आने से केंद्र पानी संबंधी जो भी कानून बनाएगा, उन्हें मानना राज्य सरकारों की बाध्यता होगी। केंद्रीय जल नीति हो या जल कानून, वे पूरे देश में एकसमान लागू होंगे। पानी के समवर्ती सूची में आने के बाद केंद्र द्वारा बनाए गए कानून के समक्ष राज्यों के कानून स्वतः निष्प्रभावी हो जाएंगे और जल बँटवारा विवाद में केंद्र का निर्णय अंतिम होगा। नदी जोड़ो परियोजना के संबंध में अपनी आपत्ति को लेकर अड़ जाने के राज्यों के अधिकार पर पाबंदी लग जाएगी और केंद्र सरकार इसे बेरोक-टोक पूरा कर सकेगी। लेकिन इस बात में संदेह जरूर है कि इससे राज्यों के बीच नदी जल को लेकर होने वाले विवाद रुक जाएगें। संभव है, राज्यों की कृषि सिंचाई परियोजनाओं को इससे हानि पहुँचे तथा नदी जल उपयोग को लेकर तनाव और ज्यादा गंभीरता से सामने आए। एक तर्क यह भी है कि केंद्रीकरण से तानाशाही व्यवस्था को बल मिलता है, जबकि पानी समाज के लिये है। अतः उसके प्रबंधन की व्यवस्था भी समाज के हाथों में ही होनी चाहिये।

ऐसे भी नदी जल के समवर्ती सूची में आने से जलाधिकार के संघर्ष और पानी के व्यवसायीकरण की संभावनाएँ घटने के बजाय बढ़ेगी। नदी जल को लेकर वर्तमान में जो संवैधानिक स्थिति है, उसका मतलब है कि केंद्र सरकार पानी को लेकर राज्यों को दिशा-निर्देश जारी कर सकती है। केंद्रीय जल नीति व केंद्रीय जल कानून बना सकती है, लेकिन उन्हें उसी रूप में या पूर्णतः मानने के लिये वह राज्य सरकार को बाध्य नहीं कर सकती। किंतु राज्य का विषय होने का मतलब यह कतई नहीं है कि नदी जल के मामले में केंद्र का इसमें कोई दखल नहीं है। राज्यों के बीच बहने वाले नदी जल को लेकर जब विवाद हो जाए तो निःसंदेह केन्द्र को उसमें दखल देने का अधिकार है। इस अधिकार का उपयोग करते हुए ही तो एक समय केन्द्र सरकार द्वारा जल रोकथाम एवं नियंत्रण कानून (1974) की धारा 58 के तहत श्केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्डश् और श्केंद्रीय जल आयोग का गठन किया गया था। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय संविधान संघात्मक होने के बावजूद एकात्मक हो जाता है अर्थात विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर भी राज्य सभा के प्रस्ताव द्वारा संसद कानून बना सकती हैं (अनुच्छेद 249) अतः यह आवश्यक नहीं कि नदी जल को समवर्ती सूची में ही शामिल कर दिया जाए।

केंद्र राज्य संबंधों के उपर्युक्त विवेचन में यह उल्लेखनीय है कि दोनों के बीच का संबंध इस बात पर निर्भर करता है कि केंन्द्र की सरकार कितनी मजबूत है । अगर केंन्द्र की सरकार एक दल की है और उसके पास लोकसभा में स्पष्ट बहुमत है तो ऐसे में स्वाभाविक तौर पर केंद्र का वर्चस्व बढ़ता जाता है इसके विपरीत यदि केन्द्र में गठबंधन की सरकार है और गठबंधन में क्षेत्रीय दलों की प्रभावी भूमिका है तो स्वाभाविक तौर पर राज्यों की सौदेबाजी की शक्ति बढ़ जाती है इस आधार पर यदि देखें तो नदी जल समझौते की विफलता के पीछे इस संवैधानिक प्रावधान या इसके आधार पर बने कानूनों की कमजोरी नहीं, बल्कि गठबंधन सरकार की मजबूरियां और क्षेत्रीय दलों का सशक्त उभार ज्यादा महत्व रखता है। सन 2014 के बाद केंद्र में सशक्त सरकार बनने के बाद इन विवादों के समाधान की अपेक्षा बढ़ गई है।
नागरिकता संशोधन अधिनियम 2019 -

अभी हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा नागरिकता संशोधन कानून 2019 को पारित करने के बाद अधिकतर राज्यों ने केन्द्र सरकार की कार्यप्रणाली पर सवालिया निशान लगाया है तथा यह आरोप भी लगाया है, कि इस कानून के माध्यम से केन्द्र सरकार भारत की संघीय आत्मा को ठेस पहुँचाते हुए राज्यों पर इस कानून को लागू करने के लिए दवाब बना रही है, जो संघात्मक शासन प्रणाली के विपरीत है। दरअसल 12 दिसम्बर 2019 को राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होते ही 'नागरिकता संशोधन विधेयक' नागरिकता संशोधन कानून बन गया, लेकिन इसके तुरंत बाद ही यह विवादों के घेरे में आ गया दिल्ली से लेकर उत्तर प्रदेश होते हुए विहार, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर के राज्यों में इस नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ विराध प्रदर्शन होने शुरू हो गए। इसके पहले भी असम में राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर की सूची में न शामिल हो पाने के कारण लाखों लोग विरोध प्रदर्शन कर रहे थे, जिनमें एक बड़ी

संख्या हिन्दुओं की भी थी। नागरिकता कानून को न स्वीकार करने के पीछे राजनीतिक दलों, प्रदर्शनरत समूहों, संगठनों का कहना इतना भर है कि यह भारतीय संविधान के मूल्यों के विपरीत है। वस्तुतः केंद्र सरकार द्वारा पारित किए गए नागरिकता संशोधन कानून में ऐसे व्यक्तियों को नागरिकता देने संबंधी प्रावधान है, जो 31 दिसंबर, 2014 के पूर्व अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आए हुए हैं और वे हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदाय से ताल्लुक रखते हैं। इस कानून के तहत उक्त समुदायों से संबंध रखने वाले व्यक्तियों के लिए भारत में रहने अथवा भारत सरकार के अंतर्गत सेवा करने की न्यूनतम समय सीमा को 11 वर्ष से 5 वर्ष कर दिया गया है। नागरिकता अधिनियम में किया गया यह संशोधन एक विशेष मकसद से किया गया है। माननीय गृहमंत्री के अनुसार, यह ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत और उसके पड़ोसी देशो क्रमशः पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश के मध्य लोगो का सीमा पार प्रवासन लगातार हो रहा है।

यह विदित है कि वर्ष 1947 में जब भारत का विभाजन हुआ तब पाकिस्तान और पूर्वी- पाकिस्तान के हिस्सों में निवास कर रहे अलग-अलग विश्वासों के लोग वहीं रह गए थे। बाद में पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश ने राज्य के विशेष धर्म को मान्यता दी। यह कानून कहता है कि उक्त देशो के धार्मिक स्वरूप के कारण यहां हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और ईसाई समुदायों को धार्मिक आधार पर उत्पीड़न झेलना पड़ा। इन समुदायों से जुड़े बहुत से लोगों को अपने रोजमर्रा की अभिव्यक्तियों और अपने समुदाय विशेष का संवर्धन करने में भी कठिनाई आई। ऐसे में आजादी के बाद से बहुत से लोगों ने शरण की तलाश में इन देशों से भारत की ओर रुख किया और उसके बाद से वे भारत में ही लगातार बने हुए हैं, भले ही उनके यात्रा संबंधी दस्तावेज अवैध हो चुके हैं। यह कानून उक्त स्थिति में कुल तीन देशों से आए छः समुदायों से जुड़े लोगों को नागरिकता प्रदान करता है। इसके पहले स्थिति यह थी कि यदि इन देशों से आया कोई भी व्यक्ति जो उक्त समुदायों से जुड़ा हो, यदि उसके यात्रा संबंधी दस्तावेजों की अवधि पूरी हो जाती है, तो उसके साथ अवैध प्रवासी की तरह व्यवहार (ट्रीट) किया जायेगा साथ ही वे भारत की नागरिकता पाने के लिए आवेदन करने के हकदार नहीं होंगे।

इस कानून के लागू होने के बाद यह स्थिति नहीं रह जाएगी। इसमें छठी अनुसूची में शामिल असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के जनजातीय क्षेत्रों को शामिल नहीं किया गया है, यानी यह कानून इन क्षेत्रों पर लागू नहीं होता है। साथ ही यह कानून, श्बंगाल ईस्टर्न फ्रंटियर रेगुलेशन, 1873 के तहत लाए गए वे क्षेत्र जिन्हें श्द इनर लाइनश् के अंतर्गत रखा गया है, पर लागू नहीं होता है। इस कानून में भारत के प्रवासी नागरिकों की नागरिकता रद्द करने संबंधी प्रावधान भी हैं, यदि वे भारत सरकार द्वारा अनुमोदित किए गए किसी भी कानून का उल्लंघन करते हैं।

केंद्र सरकार द्वारा लाए गए 'नागरिकता संशोधन अधिनियम, 2019' को लेकर संसद के भीतर भारतीय जनता पार्टी का साथ देने वाली कतिपय पार्टियों ने भी देशभर में इस कानून के खिलाफ हो रहे प्रदर्शन के बाद अपनी राय बदल दी। यहां तक की बिहार और ओडिशा के मुख्यमंत्रियों ने इस कानून पर पुनर्विचार करने के लिए और एन.आर.सी. को न लागू करने की बात कही है। विवाद की स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि दिल्ली के भीतर दिसंबर मध्य से ही शाहीन बाग का आंदोलन चल रहा है, जिसकी तर्ज पर देश के अलग-अलग हिस्सों में लोग इस कानून के खिलाफ आंदोलनरत है। ये प्रदर्शन कई जगहों पर हिंसक भी हुए। देश के अलग-अलग राज्यों में विरोध प्रदर्शनों के बाद जिन राज्यों में भारतीय जनता पार्टी की सरकार नहीं थी, वहां इस कानून के खिलाफ वकायदा प्रस्ताव पारित किया गया। मध्य फरवरी, 2020 तक गैर-भाजपा शासित कुल छः राज्यों क्रमशः मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, केरल, पंजाब, पश्चिम बंगाल और राजस्थान की विधानसभाओं ने नागरिकता संशोधन कानून के खिलाफ प्रस्ताव पारित किए। इन राज्यों द्वारा पारित किए गए प्रस्तावों में एक बात उभयनिष्ठ है

कि ये सभी भारतीय संविधान के मूल ढांचे की दुहाई देते हुए नागरिकता संशोधन कानून, 2019 को संविधान विरोधी मानते है। वे सभी यह भी मानते है कि यह कानून धार्मिक आधार पर नागरिकता देने की कवायद करता है, जो भारतीय संविधान में निहित आदर्शों और मूल्यों के खिलाफ है। 'सेकुलर' राज्य भारतीय संविधान की पहचान है। इन प्रस्तावो में केंद्र सरकार की इस मंशा पर भी सवाल उठाया गया है, जिसमें उसने तीन देशों के धार्मिक उत्पीड़न का शिकार लोगों को नागरिकता देने का फैसला किया है। इस कानून का विरोध करने वाले यह भी कहते हैं कि सबसे पहले तो इन तीन देशों को ही क्यों चुना गया। यदि पड़ोसी देशों से धार्मिक प्रताड़ना का शिकार हुए लोगों के वर्षों से भारत आने की बात है तो श्रीलंका, भूटान, नेपाल, म्यांमार और चीन से भी बड़ी संख्या में शरणार्थी भारत आए हैं, जिनकी नागरिकता पर संशय है दूसरे वे यह भी कहते हैं कि केवल छ समुदायों को धार्मिक आधार पर पीड़ित मान लेना भी अन्य पीड़ित समुदायों के साथ भेदभाव है।

यहां तक कि पाकिस्तान में शिया मुसलमानों की एक बड़ी संख्या है, जो उत्पीड़न के शिकार हैं, बलूच लोग भी वहां उत्पीड़न के शिकार हैं। इसी तरह म्यांमार में रोहिंग्या मुसलमान, तो श्रीलंका में तमिल (श्रीलंका में वर्ष 1948 में नागरिकता अधिनियम पारित कर लगभग 7 लाख तमिलों को नागरिकता से वंचित कर दिया गया था, महज 5 हजार भारतीय तमिलों को ही श्रीलंका की नागरिकता मिल पाई थी, परिणाम यह हुआ कि श्रीलंका में लंबे समय तक गृह युद्ध चला) और भूटान में ईसाई भी धार्मिक आधार पर उत्पीड़न के शिकार हैं। ऐसे लोगों को यह कानून भारत की नागरिकता देने के बारे में विचार नहीं करता है। इस तरह इस कानून का विरोध करने वाले राज्य इस पर सांप्रदायिक होने के आरोप लगाते है। हालांकि संवैधानिक रूप से भारतीय गणराज्य के राज्यों के पास ऐसे कोई अधिकार नहीं हैं, जिससे वे संघ सूची पर केंद्र द्वारा बनाए गए कानून को मानने से इंकार कर दें। फिर भी उक्त कानून के खिलाफ प्रस्ताव पारित करने का रास्ता राज्यों के पास था। लेकिन केरल ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 131 मौलिक अधिकारिता के तहत इस कानून के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। जैसा कि विदित है कि भारत में

नागरिकता पर कानून बनाने का अधिकार संघ के पास है, राज्यों के पास नहीं। ऐसे में राज्यों के पास ष्प्रस्ताव पारित करने का ही एकमात्र रास्ता बचता है। ऐसे प्रस्ताव एक तरह के 'राजनीतिक वक्तव्य' होते हैं, जिनसे देश में एक संदेश जाता है कि अमुक कानून के प्रति देश में एक राय नहीं है। लेकिन यदि राज्य केंद्र के कानून और निर्देशों को मानने से इंकार करते हैं, तो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 365 के अनुसार, यह अनुच्छेद 356 लगाने के लिए एक कारण बनता है। फिलहाल स्थिति यह है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस कानून के खिलाफ आई लगभग डेढ़ सौ याचिकाओं में से लगभग साठ को एक साथ जोड़ कर सुनवाई करते हुए कानून पर रोक नहीं लगाई। न्यायालय द्वारा केंद्र सरकार को जबाब देने के लिए एक महीने का समय दिया गया है। न्यायालय ने यह भी कहा है कि केंद्र सरकार अपनी तरफ से कानून के खिलाफ दायर अन्य याचिकाओं का अध्ययन करके न्यायालय में जवाब दाखिल करे। इस तरह नागरिकता संशोधन कानून, 2019 पर स्थिति अभी भी स्पष्ट नहीं है। फिर भी एनपीआर की प्रक्रिया को शुरू करने के लिए बजट जारी किया जा चुका है। देखने वाली बात यह होगी कि राज्य सरकारों और व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर लोगों को सर्वोच्च न्यायालय से इस दिशा में कैसी राहत मिलती है।

राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर (छच्त्) -
17 वीं लोकसभा के गठन के बाद राष्ट्रपति का अभिभाषण 20 जून, 2019 को हुआ। राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद ने संसद को संबोधित करते हुए राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर का जिक्र किया। उनके अभिभाषण के बाद एक अधिसूचना जारी करते हुए गृह मंत्रालय द्वारा 1 अप्रैल, 2020 से 30 सितंबर, 2020 तक राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर की प्रक्रिया को पूरा करने की बात कही गई। राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर इस तथ्य का रिकॉर्ड रखता है कि कौनसा व्यक्ति किस जगह पर निवास करता है। इसमें यह देखा जाएगा कि व्यक्ति जिस जगह पर निवास कर रहा है, वह रिकॉर्ड में है या नहीं। यह किसी व्यक्ति के छः माह की स्थायी निवास स्थिति को रिकॉर्ड करने हेतु है। वर्ष 2020 में प्रस्तावित एनपीआर एक तरह से 'डेमोग्राफिक डेटा' और 'बायोमीट्रिक डेटा' दोनों का संकलन होगा।

यह भी देखा जाना चाहिए कि क्या एनपीआर की वैधता पर कोई संकट है। सर्वोच्च न्यायालय ने एनपीआर के बारे में अभी तक कोई अंतिम निर्णय नहीं दिया है। एनपीआर की प्रक्रिया 10 दिसंबर, 2003 को बनाए गए नागरिकता नियम से निर्धारित हुई । ये नियम नागरिकता अधिनियम की धारा 14 (।) के तहत बने हैं, जबकि नागरिकता अधिनियम, 1955 में धारा 14 (।) को अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने 3 दिसंबर, 2004 को जोड़ा। इस तरह जिस मुख्य कानून के तहत यह नियम लाया गया, जिससे एनपीआर की प्रक्रिया आगे बढ़ेगी, वह स्वयं बाद में आता है और 'नियम' पहले। दोनों में तकरीबन एक साल का अंतर है। इस अंतर्विरोध के बाद भी 15 जुलाई, 2009 को भारत सरकार द्वारा एक अधिसूचना जारी करते हुए एन. पी. आर. के प्रथम चरण को भारत के तटीय क्षेत्रों में लागू करने की बात कही गई। इन क्षेत्रों में क्रमशः आंध्र-प्रदेश (तत्कालीन), गुजरात, केरल, गोवा, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, पुडुचेरी, अंडमान और निकोबार, लक्षद्वीप और दमन और द्वीव शामिल हैं। बाद में 15 मार्च, 2010 को गृह मंत्रालय ने एन.पी.आर. के बारे में अधिसूचना जारी कर इसे 1 अप्रैल, 2010 से 30 सितंबर, 2010 तक पूरे देश में लागू करने की बात की। यह प्रक्रिया वर्ष 2011 की राष्ट्रीय जनगणना के ठीक पहले अपनाई गई थी।

बाद में वर्ष 2011 में एन. पी. आर. की एक निर्देशिका जारी की जाती है, जिसके तहत 1 जुलाई, 2015 से एन.पी.आर. के विवरणों में परिवार को भी शामिल कर लिया जाता है। 17 जुलाई, 2015 को एन.पी.आर. में आधार को भी शामिल करने के संबंध में अधिसूचना जारी की गई। अंततः 29 सितंबर, 2019 को वर्ष 2021 की जनगणना के लिए 'रजिस्ट्रार जनरल' की नियुक्ति होती है, जिसे एन. पी. आर. को अपडेट करने की जिम्मेदारी दी जाती है। उल्लेखनीय है कि नागरिकता अधिनियम, 1955 और जनगणना अधिनियम में कहीं भी एन.पी.आर. का उल्लेख नहीं है। एक तथ्य और यहा उल्लेखनीय है कि जनगणना अधिनियम के अनुसार, जनगणना के समय जो व्यक्ति अपनी जानकारी देता है, तो वह जानकारी 'प्रोटेक्टेड' होती है, यानी उसे संरक्षण प्राप्त होता है। इस तरह एनपीआर में कुछ ऐसे प्रावधानों का उल्लेख है, जिसकी इजाजत नागरिकता अधिनियम की धारा 14 (।) भी नहीं देती है। मसलन यदि किसी भी व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना पर किसी दूसरे व्यक्ति को आशंका है, तो दूसरा व्यक्ति उसके खिलाफ सक्षम अधिकारी के समक्ष शिकायत दर्ज करा सकता है। ऐसी शिकायत पर सक्षम अधिकारी तीस दिनों के भीतर निर्णय करेगा। यह प्रावधान किसी भी व्यक्ति को दूसरे की नागरिकता पर सवाल उठाने का अधिकार दे देता है। इसमें एक और विसंगति यह भी है कि परिवार के मुखिया के ऊपर सही सूचना देने की बाध्यता भी है, यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो उसे सजा दी जा सकती है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है। एनपीआर की सूची में शरणार्थी, विदेशी, अजनबी, आश्रय के इच्छुक एवं अवैध प्रवासियों के नाम भी शामिल होंगे। इन श्रेणियों का जिक्र नागरिकता अधिनियम की धारा 14 अ में नहीं है। वह केवल नागरिकों की बात करता है, यहां तक कि उसमें परिवार के मुखिया का नाम भी नहीं है।

कोरोना संकट:- कोरोना संकट के चलते स्कूल-कॉलेजो पर पढ़ाई बंद चल रही है, सत्र समय से शुरू नहीं हो पा रहे हैं। जिससे पाठयक्रम के पिछड़ने की चिंता लोगों को सता रही है, इसी को देखते हुए सीबीएसई (सेंट्रल बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजूकेशन) द्वारा 9 वीं से 12 वीं तक के पाठयक्रम को तीस प्रतिशत कम करने की बात कही गई। बाद में यह जानकारी निकलकर सामने आई कि तीस प्रतिशत सिलेबस कम करने के नाम पर सीबीएसई ने 11वीं की राजनीति विज्ञान की किताबों से संघवाद, राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता एंव 12वीं की राजनीति विज्ञान से भारत के पड़ोसियों से संबंध जैसे अन्य विषयों को हटा दिया है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान के तहत आने वाले 10वीं के राजनीति विज्ञान के पाठ्यक्रम से लोकतंत्र और विविधता, लिंग, धर्म और जाति, लोकप्रिय संघर्ष और आंदोलन और लोकतंत्र के लिए चुनौतियां पर पूरे अध्याय को हटा दिया गया है देश के बड़े नेता इन बदलावों का विरोध कर रहे हैं। इस पर अचरज जताते हुए बंगाल की सीएम ममता बनर्जी ने ट्वीट कर लिखा, कोविड संकट के दौरान सी.बी.एस.ई. का कोर्स कम करने के नाम पर केंद्र सरकार ने नागरिकता, संघवाद, धर्मनिरपेक्षता और बंटवारे जैसे विषयों को हटा

दिया. ममता बनर्जी ने इसका घोर विरोध करते हुए एचआरडी मंत्रालय से अपील की है कि इन अहम चीजों को किसी कीमत पर न हटाया जाए। कुछ ऐसी ही भावनाओं से गुजर रहे कांग्रेस के तिरुवनंतपुरम से सांसद शशि थरूर ने कहा कि 10वीं के छात्र अब लोकतंत्र और विविधता, लिंग धर्म और जाति, अहम संर्घष और मुहिम के बारे में नहीं पढ़ पाएंगे। सिलेबस कम करने के नाम पर हटाई गई चीजों को लेकर थरूर ने कहा कि ये अहम विषय हैं, उन्होंने कहा, जिन लोगों ने हटाए गए विषयों को चुना है उनकी नीयत पर शक किया जाना चाहिए। कर्नाटक से कांग्रेस के राज्य सभा सांसद जयराम रमेश ने ट्वीट कर पीएम नरेंद्र मोदी पर हमला बोला, उन्होंने लिखा, लोकतांत्रिक अधिकार, धर्मनिरपेक्षता और अन्य अध्यायों को स्कूल के कोर्स से हटा दिया गया है,

ऐसे शासन से क्या उम्मीद करें जिसका नेतृत्व करने वाले 'एंटायर पॉलिटिकल साइंस' में डिग्री होने का दावा करते हैं? स्वघोषित संविधान भक्ति का ये भयानक पाखंड चैंका देने वाला है। इस विवाद पर सीबीएसई के एक वरिष्ठ अधिकारी ने नाम न छापने की शर्त पर दिप्रिंट से कहा, श्जो 190 के करीब विषय हैं उन्हें इस तरह से कम किया गया है जिससे बच्चों का लर्निंग गैप कम हो, जो 30 प्रतिशत चीजें हटाई गई हैं वो बोर्ड की परीक्षा में नहीं आएंगी, इन विषयों से बच्चों को किसी न किसी तरह से अवगत कराया जाएगा. 'अधिकारी ने कहा कि जो हटाया गया है वो बच्चों को पहले ही पढ़ाया जा चुका है. होता ये है कि आगे की कक्षाओं में ये विषय व्यापक हो जाते हैं। लेकिन बच्चों ने पिछली कक्षाओं में इसे पढ़ लिया है। अधिकारी ने कहा कि ये कहना गलत होगा कि इन विषयों का पूरा कॉन्सेप्ट ही खत्म कर दिया गया है।

अंततः यही कहा जा सकता है कि धर्मनिरपेक्ष देश में यह पहली प्राथमिकता होती है कि वह देश के सभी नागरिकों के हित की बात करें तथा ऐसी नीतियों का निर्माण करें जिससे की देश के सुदूर गांवों में रह रहे विशेष समुदाय के लोग भी इससे संतुष्ट हो तथा भारत का संघीय ढ़ाचा सुरक्षित बना रहा है। भारत को अपने वसुधैव कुटुम्बकम तथा सर्वधर्म समभाव वाली संस्कृति बनाकर रखना होगा जिससे वह अपनी सर्वोच्चता को बनाये रख सके। इसके अलावा देश के सभी नागरिकों चाहें वह किसी धर्म या समुदाय के हो उन्हें सरकार द्वारा बनाई जा रही नीतियों का सही से व गहराई से अध्ययन करना चाहिए जिससे कि नागरिकता संशोधन अधिनियम की सही बातों को जाना जा सके। इसके साथ ही सरकार का यह भी दायित्व है कि वह इस अधिनियम से संबंधित सभी प्रावधानों की बारीकियों को स्पष्ट करें जिससे लोगों में भ्रम की स्थिति न हो।

संदर्भ ग्रंथ

1. कोठारी, रजनी (2017), भारत में राजनीति कल और आज, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली,
2. लक्ष्मीकान्त, एम. (2017), 'भारत की राज्यव्यवस्था', ऑरिएंट ब्लैक स्वान, प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद,
3. अनुज कुमार अग्रवाल, (फरवरी 2015), श्संघ व राज्यों के आर्थिक संबंधों की पुर्नव्यवस्था, सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, योजना पत्रिका, नई दिल्ली,
4. कोठारी, रजनी (2019), 'भारत में राजनीति', ओरियंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद,
5. जैन, पुखराज एंव वाजपेयी, अरूणोदय (2019), 'स्वतंत्र भारत में राजनीति', साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा,
6. सईद, एस. एम. (2008), भारतीय राजनीतिक व्यवस्थाश् भारत बुक सेण्टर, लखनऊ,
7. राय, राकेश (1998), भारत में शासन पद्धति एंव राजनीति दलों की भूमिका, विवेक प्रकाशन, मेरठ,
8. जैन, पुखराज एंव वाजपेयी, अरूणोदय (2019), स्वतंत्र भारत में राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा,
9. मिश्रा, पी.एन. (2003), श्सत्ता का गलियारा, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, तापल, बी. बी. (2000), श्भारतीय राजनीतिक व्यवस्थाश्, सुल्तानचन्द्र एण्ड सन्स, नई दिल्ली
10. डॉ. राजकुमार (2006), श्शासन और राजनीतिश् रोशन ऑफ सेन्टपीटर्सश्, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, जयपुर